रीतिकाव्यः स्वरूप एवं पृष्ठभूमि

डॉ. हेम लता
हिन्दी–व्याख्याता
राजकीय महाविद्यालय, हेली मण्डी (जाटौली)
गु:ग्राम (हरियाणा)

'रीति' शब्द व्युत्पति और स्व:पः–

रीति शब्द 'रीड्गतौ' धातु से बना है जिसका सामान्यतः अर्थ प्रणाली, पद्वति, गति, मार्ग या पंथ होता है। संस्कृत में सबसे पहले इस शब्द का प्रयोग 9वीं शताब्दी में वामन ने सम्प्रदाय विशेष के लिए किया। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है–'' जैसा कि शास्त्रीय पृष्ठभूमि से स्पष्ट है, रीति–सम्प्रदाय रचना अथवा बाध्यकार को ही काव्य का सर्वस्व मानकर चलता है। संभव है आरम्भ में हिन्दी में रीति शब्द का मूल संकेत रीति–सम्प्रदाय से ही लिया गया हो, परन्तु वास्तव में यहाँ इसका प्रयोग सर्वथा सामान्य एवं व्यापक अर्थ में ही हुआ है।''[1] हिन्दी में इसका प्रयोग विशष्ट रूढ़िबद्व रचना के लिए किय गया है। ऐसी रचना जिसमें काव्य शास्त्रीय विवेचन के साथ ऐन्द्रिक तथा श्रृंगारित उदाहरणों की परम्परा मिलती हो। इस प्रकार काव्य–शास्त्रीय विधान के अर्थ में 'रीति' शब्द का प्रयोग हिन्दी की अपनी विशेषता है। ऐसी बात नहीं है कि उस संदर्भ में रीति का सर्वप्रथम प्रयोग आधुनिक काल के आलोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने किया है। इसकी प्राचीन परम्परा स्वयं रीतिकाल के कवियों में मिलती है। उन्होनें वामन की विशिष्ट पद रचना के अर्थ में भी रीति का प्रयोग किया है और उसके पूर्ववर्ती कवि आचार्यो के द्वारा विभिन्न अर्थो में प्रयुक्त रीति शब्द को देखा जा सकता है। चिन्तामणि, रीति सुभाषा कवित की'।[2] 'केशव बनरत कवि इति रीति'[3] 'बरनन पंथ अगाध'[4] पदमाकर 'रस ग्रन्थन की रीति'[5] आदि।

इन उदाहरणों से स्पष्ट है कि रीति या पंथ या प्रयोग काव्यशास्त्र की विभिन्न शाखाओं के लिए हुआ है। यहां यह ध्यान देने की बात है कि रीति या पंथ शब्द कभी अकेले नहीं प्रयुक्त हुए उनके साथ काव्य, अलंकार, छन्द आदि का प्रयोग यह सिद्व करता है कि उस समय रीति का अर्थ था शास्त्रीय विद्वान या शास्त्रीय परम्परा। डॉ. नगेन्द्र ने लिखा है कि रीतिकाल के उतरार्द्व में, 'रीति' शब्द प्रकार प्रणाली के अर्थ में काफी प्रचलित हो गया है। सरदार आदि कवियों के समय में यह शब्द इस रूप में सर्वसाधारण में स्वीकृत था।''[6]

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने रीतिकाल के नामकरण प्रसंग में लिखा है कि 'मिश्रबन्धु विनोद' के अनुसार उतरमध्यकाल, अलंकृत काल है और हिन्दी साहित्य के अनुसार 'रीतिकाल'। मिश्र बन्धुओं ने 'अलंकृत' शब्द का व्यापक अर्थ ग्रहण किया है। 'अलंकार शास्त्र' कहने से संस्कृत में जैसे रस, अलंकार, रीति, पिंघल आदि काव्यांगों का बोध होता है। उसी प्रकार हिन्दी साहित्य का इतिहास में 'रीति' शब्द का प्रयोग रस, अलंकार, पिंघल आदि काव्यांगों के लिए किया गया है।[7]

'रीति' शब्द का अर्थः

'रीति' का प्रयोग हिन्दी में प्रायः लक्षण ग्रन्थों के लिए होता है जिन ग्रन्थों में काव्य के विभन्न अंगों का लक्षण व उदाहरण सहित विवेचन होता है, उन्हें रीति ग्रन्थ कहते है और जिस वैज्ञानिक पद्वति पर, जिस विधान के अनुसार यह विवेचन होता है उसे रीति शास्त्र कहते है। जिस ग्रन्थ में रचना सम्बन्धी नियमों का विवेचन हो वह रीति ग्रन्थ और जिस काव्य की रचना इन नियमों से आबद्व हो वह 'रीति' काव्य है।

'रीति' शब्द गत्यार्थ रीढ' धातु में 'कितच' प्रत्यय के योग से बनता है, जिसका अर्थ है गति, मार्ग, पंच शैली और रूढ़ अर्थ है। पद्वति या विधि आदि। 'रीति' शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग वामन ने किया उनके अनुसार रीति शब्द का अर्थ है। 'विशिष्ट पद रचना रीति।''[8]

वैदिक साहिद्यत्य में रीति शब्द विभिन्न अर्थो में प्रयुक्त हुआ है। रीढ़ रूवणे धातु से विष्पन्न रीति शब्द धारा।[9] के अर्थ में वातेवाजुर्यानेव रीति मन्त्र में रीड़गता धातु से उत्पन्न रीति शब्द मार्ग और गमन[10] के अर्थ में और वामस्य रीति परशोखि'' में रीति स्वभाव एवं गति के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है।

अग्नि पुराण ने भी वाग्विधा के सम्प्रति ज्ञान को रीति माना है।[12] कुन्तक ने रीति के स्थान पर परम्परित 'मार्ग' शब्द का प्रयोग किया है।[13] अतः संस्कृत काव्य शास्त्र में रीति को आत्मकाव्य शैली या काव्य मार्ग के अर्थ में स्वीकृत होता रहा है।

रीतिकाल का नामकरणः–

हिन्दी साहित्य का काल विभाजन करते हुए आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य को इस प्रकार विभाजित किया हैः–

1. आदिकाल (वीरगथा काल सं. 1050–1375 विक्रमी)

2. पूर्व मध्यकाल (भक्तिकाल सं. 1375–1700 विक्रमी)

उतरमध्यकाल (रीतिकाल सं. 1700–1900 विक्रमी)

आधुनिककाल (गद्यकाल सं. 1900–1984 विक्रमी)

में विभाजित किया है।[14] विवेच्य काल को उन्होनें उतर माध्यकाल या रीतिकाल नाम दिया है, किन्तु उनके पूर्ववर्ती इतिहासकार मिश्रबन्धुओं ने इसे अलंकृतकाल माना है।[15]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल को इस काल के नामकरण में उपयुक्त मिश्रबन्धु विनोद और रीतिकालीन कवियों के 'रीति' नाम के प्रयोगों से प्रेरणा मिला हो। ऐसी ही संभावना डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने भी व्यक्त की है।''[16]

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने उतरमध्यकाल का नाम रीतिकाल की अपेक्षा श्रृगांरकाल रचना अधिक उपयुक्त समझा। उन्होनें बताया कि ''किसी साहित्य काल के नामकरण की उपयुक्तता के दो तत्व उपलब्ध होते हैं। एक तो सर्वमान्य प्रवृत्ति का बोध हो, दूसरे अन्तर्विभाग का मार्ग अवरूद्व रखे।''[17]

पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र आगे लिखते हैं कि यदि टीकाकारों या संग्रहकर्ताओं के अनुसार चले तो आलम, ठाकुर, घनानन्द आदि की भी रचनाएँ नायक–नायिका भेद के अन्तर्गत ही खींचकर बैठायी जा सकती है। कहने का तात्पर्य यह है कि इन कवियों का साध्य श्रृंगार था, रीति से यह कभी–कभी साधन का काम अवश्य ले लेते थे। यदि श्रृंगारकाल नाम रखा जाता तो यह तर्क देने की भी आवश्यकता न पड़ती और वे तथा उनके अतिरिक्त फुटकल खाते में फैंके और भी बहुत से कवि उसकी सीमा में अपने आप आ जाते।[18]

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने भी इस काल को प्रवृति की अन्तः प्रेरणा, रस की दृष्टि से श्रृंगारकाल कहने में कोई आपत्ति नहीं मानी है।19 शुक्ल जी का नामकरण यदपि रीतिकाल के सम्पूर्ण साहित्य को अपने में समाहित नहीं करता और इसलिए घनानन्द जैसे रीतिमुक्त कवि फुटकल खातों में जो पड़े, परन्तु हिन्दी में प्रचलित और सर्वमान्य नामकरण उन्हीं का हुआ।

रीति–काव्य का स्वरूप

रीति–काव्य का तात्पर्य उस काव्य से है जिसका निर्माण रीति–निरूपण या शास्त्र–स्थिति–सम्पादन में उदाहरण स्व:प हुआ। इसके अन्तर्गत उन आचार्यो की रचनाएँ आती है जो रस, अलंकार, पिंघल आदि के लक्षणों के उदाहरण प्रस्तुत करते हुए काव्य–प्रणयन करते थे। इसके

साथ ही उन कवियों की भी रचनाएँ ली जाती है, जो लक्षण, लक्ष्य की परम्परा में आब¼ न होकर केवल लक्ष्यमात्र है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने इस परम्परा के प्रमुख कवि बिहारी को रीतिकाल के प्रमुख कवियों में रखते हुए लिखा है, 'बिहारी ने यदपि लक्षण ग्रन्थ के रूप में अपनी सतसई'' नहीं लिखी है, पर नखशिख, नायिका भेद, षड़ऋतु के अन्तर्गत उनके सब श्रृंगारी दोहे आ जाते हैं।''[20] इस प्रकार रीतिकाव्य के आयोग में लक्षण सहित और लक्षण रहित दोनों प्रकार की श्रृंगारी कविता आ जाती है।

रीतिकाय की प्रवृतियांः

रीतिकाव्य की मुख्य प्रवृतियों को ही ध्यान में रखकर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों–मिश्रबन्धु, पं. रामचन्द्र शुक्ल और पं. विश्वनाथ प्रसाद मिश्र ने हिन्दी साहित्य के उतरमध्यकाल को विभिन्न नामं से सम्बोधित किया। अलंकृत, रीति और श्रृंगार नाम से रीतिकाव्य की तीन प्रवृतियों का घोतन होता है। इन्हें क्रमशः श्रृंगारिकता की प्रवृति, रीतिनिरूपण की प्रवृति और अलंकरण की प्रवृति कहा जा सकता है।

1. श्रृंगारिकता परम्परा
2. श्रृंगारिकताः परिवेश
3. रीति–निरूपण
4. रीति–निरूपण परम्परा
5. रीति–निरूपण परिवेश
6. अलंकार की प्रवृतिः परम्परा
7. अलंकार की प्रवृतिः परिवेश

डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी ने इस ओर संकेत किया है। वे लिखते हैं, ''ये (रीति–ग्रन्थ) भी सब ओर से बाधा पाकर सिमटे हुए चित को भुलाने का बहाना मात्र है जिसमें उक्त चमत्कार के साथ भी बहुत न्याय नहीं किया गया है। इन ग्रन्थों के पाठक के चित में तो मनुष्य–जीवन के किसी बड़े लक्ष्य को प्राप्त करने की स्फूर्ति संचारित होती है और न काव्य के व्यापक स्वरूप का परिचय मिलता है। यहां प्रत्येक वक्तव्य किसी विशिष्ट वचन–भंगिमा का आश्रय लेकर काव्य बन सकता है।[21]

कोई भी काव्य अपनी पूर्ववर्ती परम्परा का विकास होता है। परम्परा के विकास में युग धर्म का योगदान अक्षुण्य होता है।

संदर्भः–

1. डा. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ. 129
2. चिन्तामणि, कवि कल्पतरू, पृ. 1/6
3. केशव, रसिकप्रिया, पृ. 3/24
4. केशव, कविप्रिया, पृ. 3/1
5. पद्माकर, जगद्विनोद, पृ. 5/5
6. डा. नगेन्द्र, रीतिकाव्य की भूमिका, पृ. 130
7. बिहारी, विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ. 2
8. मानवेद पाठक, रीतिशास्त्र के प्रतिनिधि आचार्य
9. डा. सतीश भार्गव, रीतिकालीन वीरकाव्य में रीतितत्व, पृ. 56
10. वही, पृं. 56
11. वही, पृं. 56
12. डा. सतीश भार्गव, रीतिकालीन वीरकाव्य में रीतितत्व, पृ.. 57
13. वही, पृं. 57
14. रामचन्द्र शुक्ल हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 1
15. मिश्रबन्धु, मिश्रबन्धु विनोद, भाग–।
16. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, 1952, पृ. 291
17. बिहारी विश्वनाथ प्रसाद मिश्र, पृ. 4
18. वही पृ. 6–8
19. रामचन्द्र शुक्ल, हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृ. 223
20. वही पृ. 232
21- डा. हजारी प्रसाद द्विवेदी, हिन्दी साहित्य, पृ. 307–08